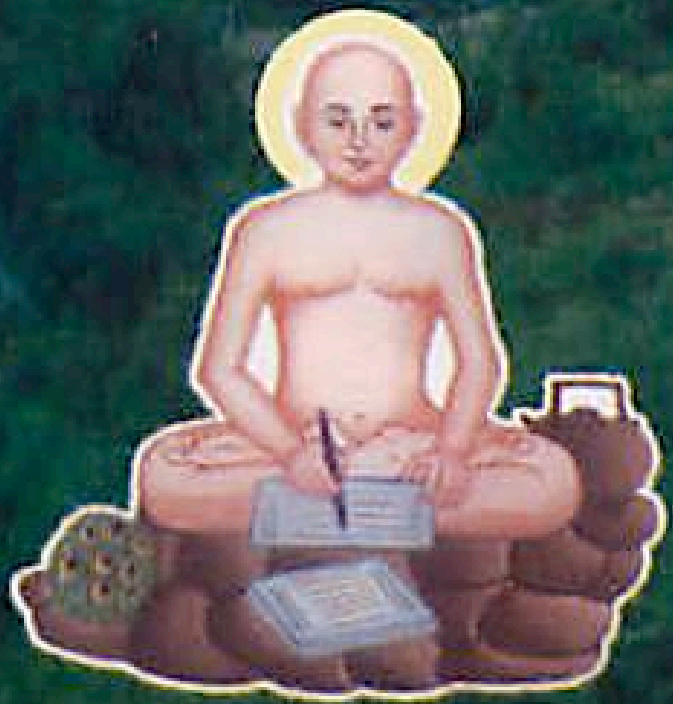

अष्टपाहुड़ : पद्यानुवाद

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

अष्टपाहुड़ : पद्यानुवाद

पद्यानुवादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच.डी.

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२ ०१५

प्रथम संस्करण : ५ हजार
(११ सितम्बर २००२)
योग : ५ हजार

मूल्य : **तीन रुपये**

टाइपसैटिंग :
त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स
ए-४, बापूनगर, जयपुर

मुद्रक :
जयपुर प्रिन्टर्स प्रा.लि.
एम.आई.रोड, जयपुर

इस पुस्तक की कीमत कम करने हेतु साहित्य प्रकाशन ध्रुवफण्ड पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर की ओर से ५८३१/- रुपये प्रदान किये गये।

प्रकाशकीय

आचार्य कुन्दकुन्दकृत पंचपरमागमों में 'अष्टपाहुड़' एक प्रमुख ग्रंथ है। यह अष्टपाहुड ग्रंथ पांच सौ दो गाथाओं में निबद्ध तथा आठ पाहुड़ों में विभक्त है। ये पाहुड़ हैं – दर्शन पाहुड़, सूत्र पाहुड़, चारित्र पाहुड़, बोध पाहुड़, भाव पाहुड़, मोक्ष पाहुड़, लिंग पाहुड़ और शील पाहुड़।

आचार्य कुन्दकुन्द और उनके व्यक्तित्व को इस युग में जन-जन तक पहुँचाने में सर्वाधिक योगदान पूज्य कानजीस्वामी का रहा है। स्वामीजी के महाप्रयाण के पश्चात् डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के द्वारा इस महान कार्य को पूरी शक्ति और निष्ठा से आगे बढाया जा रहा है। आज पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के माध्यम से आचार्य कुन्दकुन्द प्रणीत ग्रंथों का सर्वाधिक प्रकाशन कर उन्हें उपलब्ध कराया जा रहा है।

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल द्वारा रचित पद्यानुवादों में समयसार पद्यानुवाद,

समयसार कलश पद्यानुवाद, योगसार पद्यानुवाद, कुन्दकुन्द शतक, शुद्धात्म शतक, आदि की अपार सफलता के पश्चात् अब यह 'अष्टपाहुड' पद्यानुवाद आपके हाथों में है, आशा है समाज इसका समुचित समादर करेगी।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि डॉ. भारिल्ल द्वारा अभी हाल में ग्रंथाधिराज समयसार और उसकी टीकाओं का अनुशीलन ५ भागों के माध्यम से लगभग २ हजार १३६ पृष्ठों में प्रकाशित होकर जन सामान्य तक पहुँच चुके हैं।

अध्यात्मप्रेमी समाज 'अष्टपाहुड पद्यानुवाद' की शीघ्र तैयार होने वाली संगीतमय कैसेट से लाभान्वित हों, इसी भावना के साथ –

– नेमीचन्द पाटनी
महामंत्री

विषय-सूची

१. दर्शनपाहुड़	७
२. सूत्रपाहुड़	१५
३. चारित्रपाहुड़	२१
४. बोधपाहुड़	३१
५. भावपाहुड़	४४
६. मोक्षपाहुड़	७८
७. लिंगपाहुड़	१००
८. शीलपाहुड़	१०५

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

०१. पण्डित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्त्व	२०.००	१७. दृष्टि का विषय	१०.००
०२. समयसार अनुशीलन भाग - १	२०.००	१८. क्रमबद्धपर्याय	८.००
०३. समयसार अनुशीलन भाग - २	२०.००	१९. वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	८.००
०४. समयसार अनुशीलन भाग - ३	२०.००	२०. गागर में सागर	७.००
०५. समयसार अनुशीलन भाग - ४	२०.००	२१. आप कुछ भी कहो	६.००
०६. समयसार अनुशीलन भाग - ५	२५.००	२२. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	६.००
०७. गोली का जवाब गाली से भी नहीं	२.००	२३. आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंच परमागम	५.००
०८. परमभावप्रकाशक नयचक्र	२०.००	२४. युगपुरुष कानजीस्वामी	५.००
०९. बिखरे मोती	१६.००	२५. णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन	५.००
१०. सत्य की खोज	१६.००	२६. मैं कौन हूँ ?	४.००
११. आत्मा ही है शरण	१५.००	२७. निमित्तोपादान	३.५०
१२. चिन्तन की गहराईयाँ	२०.००	२८. अहिंसा : महावीर की दृष्टि में	३.००
१३. सूक्ति सुधा	१८.००	२९. मैं स्वयं भगवान हूँ	३.००
१४. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	१५.००	३०. रीति-नीति	३.००
१५. बारह भावना : एक अनुशीलन	१२.००	३१. शाकाहार	२.५०
१६. धर्म के दशलक्षण	१६.००	३२. तीर्थंकर भगवान महावीर	२.५०

३३. चैतन्य चमत्कार, ३४. गोम्मटेश्वर बाहुबली, ३५. वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर, ३६. बारह भावना, ३७. कुन्दकुन्द शतक, ३८. शुद्धात्म शतक, ३९ समयसार पद्यानुवाद, ४०. योगसार पद्यानुवाद ४१. अनेकान्त और स्याद्वाद, ४२. शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर, ४३. सार समयसार, ४४. बालबोध पाठमाला भाग - २, ४५. बालबोध पाठमाला भाग - ३, ४६. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग - १, ४७. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग - २, ४८. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग - ३, ४९. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १-, ५०. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग - २, ५१. समयसार कलश पद्यानुवाद, ५२. बिन्दु में सिन्धु।

अष्टपाहुड : पद्यानुवाद

दर्शनपाहुड़

(हरिगीत)

कर नमन जिनवर वृषभ एवं वीर श्री वर्द्धमान को।
संक्षिप्त दिग्दर्शन यथाक्रम करूँ दर्शनमार्ग का ।।१।।
सद्धर्म का है मूल दर्शन जिनवरेन्द्रों ने कहा।
हे कानवालो सुनो ! दर्शनहीन वंदन योग्य ना।।२।।
दृगभ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं उनको कभी निर्वाण ना।
हों सिद्ध चारित्रभ्रष्ट पर दृगभ्रष्ट को निर्वाण ना।।३।।

जो जानते हों शास्त्र सब पर भ्रष्ट हों सम्यक्त्व से।
घूमें सदा संसार में आराधना से रहित वे ॥४॥
यद्यपि करें वे उग्रतप शत-सहस-कोटि वर्ष तक।
पर रत्नत्रय पावें नहीं सम्यक्त्व विरहित साधु सब ॥५॥
सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान बल अर वीर्य से वर्द्धमान जो।
वे शीघ्र ही सर्वज्ञ हों, कलिकलुसकल्मस रहित जो ॥६॥
सम्यक्त्व की जलधार जिनके नित्य बहती हृदय में।
वे कर्मरज से ना बंधे पहले बंधे भी नष्ट हों ॥७॥
जो ज्ञान-दर्शन-भ्रष्ट हैं चारित्र से भी भ्रष्ट हैं।
वे भ्रष्ट करते अन्य को वे भ्रष्ट से भी भ्रष्ट हैं ॥८॥

तप शील संयम व्रत नियम अर योग गुण से युक्त हों।
फिर भी उन्हें वे दोष दें जो स्वयं दर्शन भ्रष्ट हों।।९।।
जिस तरह द्रुम परिवार की वृद्धि न हो जड़ के बिना।
बस उस तरह ना मुक्ति हो जिनमार्ग में दर्शन बिना।।१०।।
मूल ही है मूल ज्यों शाखादि द्रुम परिवार का।
बस उस तरह ही मुक्तिमग का मूल दर्शन को कहा।।११।।
चाहें नमन दृगवन्त से पर स्वयं दर्शनहीन हों।
है बोधिदुर्लभ उन्हें भी वे भी वचन-पग हीन हों।।१२।।
जो लाज गारव और भयवश पूजते दृगभ्रष्ट को।
की पाप की अनुमोदना ना बोधि उनको प्राप्त हो।।१३।।

त्रैयोग से हों संयमी निर्ग्रन्थ अन्तर-बाह्य से।
त्रिकरण शुध अर पाणिपात्री मुनीन्द्रजन दर्शन कहें॥१४॥
सम्यक्त्व से हो ज्ञान सम्यक् ज्ञान से सब जानना।
सब जानने से ज्ञान होता श्रेय अर अश्रेय का॥१५॥
श्रेयाश्रेय के परिज्ञान से दु:शील का परित्याग हो।
अर शील से हो अभ्युदय अर अन्त में निर्वाण हो॥१६॥
जिनवचन अमृत औषधी जरमरणव्याधि के हरण।
अर विषयसुख के विरेचक हैं सर्वदु:ख के क्षयकरण॥१७॥
एक जिनवर लिंग है उत्कृष्ट श्रावक दूसरा।
अर कोई चौथा है नहीं, पर आर्यिका का तीसरा॥१८॥

छह द्रव्य नव तत्त्वार्थ जिनवर देव ने जैसे कहे।
है वही सम्यग्दृष्टि जो उस रूप में ही श्रद्धहै।।१९।।
जीवादि का श्रद्धान ही व्यवहार से सम्यक्त्व है।
पर नियतनय से आत्म का श्रद्धान ही सम्यक्त्व है।।२०।।
जिनवरकथित सम्यक्त्व यह गुण रतनत्रय में सार है।
सद्भाव से धारण करो यह मोक्ष का सोपान है।।२१।।
जो शक्य हो वह करें और अशक्य की श्रद्धा करें।
श्रद्धान ही सम्यक्त्व है इस भाँति सब जिनवर कहें।।२२।।
ज्ञान दर्शन चरण में जो नित्य ही संलग्न हैं।
गणधर करें गुण कथन जिनके वे मुनीजन वंद्य हैं।।२३।।

सहज जिनवर लिंग लख ना नमें मत्सर भाव से।
बस प्रगट मिथ्यादृष्टि हैं संयम विरोधी जीव वे।।२४।।
अमर वंदित शील मण्डित रूप को भी देखकर।
ना नमें गारव करें जो सम्यक्त्व विरहित जीव वे।।२५।।
असंयमी ना वन्द्य है दृगहीन वस्त्रविहीन भी।
दोनों ही एक समान हैं दोनों ही संयत हैं नहीं।।२६।।
ना वंदना हो देह की कुल की नहीं ना जाति की।
कोई करे क्यों वंदना गुणहीन श्रावक-साधु की।।२७।।
गुण शील तप सम्यक्त्व मंडित ब्रह्मचारी श्रमण जो।
शिवगमन तत्पर उन श्रमण को शुद्धमन से नमन हो।।२८।।

चौसठ चमर चौंतीस अतिशय सहित जो अरहंत हैं।
वे कर्मक्षय के हेतु सबके हितैषी भगवन्त हैं।।२९।।
ज्ञान-दर्शन-चरण तप इन चार के संयोग से।
हो संयमित जीवन तभी हो मुक्ति जिनशासन विषैं।।३०।।
ज्ञान ही है सार नर का और समकित सार है।
सम्यक्त्व से हो चरण अर चारित्र से निर्वाण है।।३१।।
सम्यक्पने परिणमित दर्शन ज्ञान तप अर आचरण।
इन चार के संयोग से हो सिद्ध पद सन्देह ना।।३२।।
समकित रतन है पूज्यतम सब ही सुरासुर लोक में।
क्योंकि समकित शुद्ध से कल्याण होता जीव का।।३३।।

प्राप्तकर नरदेह उत्तम कुल सहित यह आतमा।
सम्यक्त्व लह मुक्ति लहे अर अखय आनन्द परिणमे॥३४॥
हजार अठ लक्षण सहित चौंतीस अतिशय युक्त जिन।
विहरें जगत में लोकहित प्रतिमा उसे थावर कहें॥३५॥
द्वादश तपों से युक्त क्षयकर कर्म को विधिपूर्वक।
तज देह जो व्युत्सर्ग युत, निर्वाण पावें वे श्रमण॥३६॥

———o———

अद्भुत सत्य का आनन्द मात्र बातों से आनेवाला नहीं है, अन्तर में परमसत्य के साक्षात्कार से ही अतीन्द्रिय आनन्द का दरिया उमड़ेगा। — आत्मा ही है शरण, पृष्ठ-८७

सूत्रपाहुड़

अरहंत-भासित ग्रथित-गणधर सूत्र से ही श्रमणजन।
परमार्थ का साधन करें अध्ययन करो हे भव्यजन॥१॥
जो भव्य हैं वे सूत्र में उपदिष्ट शिवमग जानकर।
जिनपरम्परा से समागत शिवमार्ग में वर्तन करें॥२॥
डोरा सहित सुइ नहीं खोती गिरे चाहे वन-भवन।
संसार-सागर पार हों जिनसूत्र के ज्ञायक श्रमण॥३॥
संसार में गत गृहीजन भी सूत्र के ज्ञायक पुरुष।
निज आतमा के अनुभवन से भवोदधि से पार हों॥४॥

जिनसूत्र में जीवादि बहुविध द्रव्य तत्त्वारथ कहे।
हैं हेय पर व अहेय निज जो जानते सद्दृष्टि वे।।५।।
परमार्थ या व्यवहार जो जिनसूत्र में जिनवर कहे।
सब जान योगी सुख लहें मलपुंज का क्षेपण करें।।६।।
सूत्रार्थ से जो नष्ट हैं वे मूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं।
तुम खेल में भी नहीं धरना यह सचेलक वृत्तियाँ।।७।।
सूत्र से हों भ्रष्ट जो वे हरहरी सम क्यों न हों।
स्वर्गस्थ हों पर कोटि भव अटकत फिरें ना मुक्त हों।।८।।
सिंह सम उत्कृष्टचर्या हो तपी गुरु भार हो।
पर हो यदी स्वच्छन्द तो मिथ्यात्व है अर पाप हो।।९।।

निश्चेल एवं पाणिपात्री जिनवरेन्द्रों ने कहा।
बस एक है यह मोक्षमारग शेष सब उन्मार्ग हैं।।१०।।
संयम सहित हों जो श्रमण हों विरत परिग्रहारंभ से।
वे वन्द्य हैं सब देव-दानव और मानुष लोक से।।११।।
निजशक्ति से सम्पन्न जो बाइस परीषह को सहें।
अर कर्म क्षय वा निर्जरा सम्पन्न मुनिजन वंद्य हैं।।१२।।
अवशेष लिंगी वे गृही जो ज्ञान दर्शन युक्त हैं।
शुभ वस्त्र से संयुक्त इच्छाकार के वे योग्य हैं।।१३।।
मर्मज्ञ इच्छाकार के अर शास्त्र सम्मत आचरण।
सम्यक् सहित दुष्कर्म त्यागी सुख लहें परलोक में।।१४।।

जो चाहता नहिं आतमा वह आचरण कुछ भी करे।
पर सिद्धि को पाता नहीं संसार में भ्रमता रहे।।१५।।
बस इसलिए मन वचन तन से आत्म की आराधना।
तुम करो जानो यत्न से मिल जाय शिवसुख साधना।।१६।।
बालाग्र के भी बराबर ना परीग्रह हो साधु के।
अर अन्य द्वारा दत्त पाणीपात्र में भोजन करें।।१७।।
जन्मते शिशुवत् अकिंचन नहीं तिल-तुष हाथ में।
किंचित् परीग्रह साथ हो तो श्रमण जाँयें निगोद में।।१८।।
थोड़ा-बहुत भी परिग्रह हो जिस श्रमण के पास में।
वह निन्द्य है निर्ग्रन्थ होते जिनश्रमण आचार में।।१९।।

महाव्रत हों पाँच गुप्ती तीन से संयुक्त हों।
निरग्रन्थ मुक्ती पथिक वे ही वंदना के योग्य हैं।।२०।।
जिनमार्ग में उत्कृष्ट श्रावक लिंग होता दूसरा।
भिक्षा ग्रहण कर पात्र में जो मौन से भोजन करे।।२१।।
अर नारियों का लिंग तीजा एक पट धारण करें।
वह नग्न ना हो दिवस में इकबार ही भोजन करें।।२२।।
सिद्ध ना हो वस्त्रधर वह तीर्थकर भी क्यों न हो।
बस नग्नता ही मार्ग है अर शेष सब उन्मार्ग हैं।।२३।।
नारियों की योनि नाभी काँख अर स्तनों में।
जिन कहे हैं बहु जीव सूक्षम इसलिए दीक्षा न हो।।२४।।

पर यदी वह सद्दृष्टि हो संयुक्त हो जिनमार्ग में।
सद्आचरण से युक्त तो वह भी नहीं है पापमय॥२५॥
चित्तशुद्धी नहीं एवं शिथिलभाव स्वभाव से।
मासिकधरम से चित्त शंकित रहे वंचित ध्यान से॥२६॥
जलनिधि से पटशुद्धिवत जो अल्पग्राही साधु हैं।
हैं सर्व दुख से मुक्त वे इच्छा रहित जो साधु हैं॥२७॥

———o———

पर से भिन्नता का ज्ञान ही भेदविज्ञान है और पर से भिन्न निज चेतन भगवान आत्मा का जानना, मानना, अनुभव करना ही आत्मानुभूति है, आत्मसाधना है, आत्माराधना है। —बा.भा. अनुशीलन, पृष्ठ-६२

चारित्रपाहुड़

सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी अमोही अरिहंत जिन।
त्रैलोक्य से हैं पूज्य जो उनके चरण में कर नमन॥१॥
ज्ञान-दर्शन-चरण सम्यक् शुद्ध करने के लिए।
चारित्रपाहुड़ कहूँ मैं शिवसाधना का हेतु जो॥२॥
जो जानता वह ज्ञान है जो देखता दर्शन कहा।
समयोग दर्शन-ज्ञान का चारित्र जिनवर ने कहा॥३॥
तीन ही ये भाव जिय के अखय और अमेय हैं।
इन तीन के सुविकास को चारित्र दो विध जिन कहा॥४॥

है प्रथम सम्यक्त्वाचरण जिन ज्ञानदर्शन शुद्ध है।
है दूसरा संयमचरण जिनवर कथित परिशुद्ध है।।५।।
सम्यक्त्व के जो दोष मल शंकादि जिनवर ने कहे।
मन-वचन-तन से त्याग कर सम्यक्त्व निर्मल कीजिए।।६।।
निशंक और निकांक्ष अर निर्ग्लान दृष्टि-अमूढ़ है।
उपगूहन अर थितिकरण वात्सल्य और प्रभावना।।७।।
इन आठ गुण से शुद्ध सम्यक् मूलतः शिवथान है।
सद्ज्ञानयुत आचरण यह सम्यक्चरण चारित्र है।।८।।
सम्यक्चरण से शुद्ध अर संयमचरण से शुद्ध हों।
वे समकिती सद्ज्ञानिजन निर्वाण पावें शीघ्र ही।।९।।

सम्यक्चरण से भ्रष्ट पर संयमचरण आचरें जो।
अज्ञान मोहित मती वे निर्वाण को पाते नहीं।।१०।।
विनयवत्सल दयादानरु मार्ग का बहुमान हो।
संवेग हो हो उपागूहन स्थितिकरण का भाव हो।।११।।
अर सहज आर्जव भाव से ये सभी लक्षण प्रगट हों।
तो जीव वह निर्मोह मन से करे सम्यक् साधना।।१२।।
अज्ञानमोहित मार्ग की शंसा करे उत्साह से।
श्रद्धा कुदर्शन में रहे तो बमे सम्यक्भाव को।।१३।।
सद्ज्ञान सम्यक्भाव की शंसा करे उत्साह से।
श्रद्धा सुदर्शन में रहे ना बमे सम्यक्भाव को।।१४।।

तज मूढ़ता अज्ञान हे जिय ज्ञान-दर्शन प्राप्त कर।
मद मोह हिंसा त्याग दे जिय अहिंसा को साधकर॥१५॥
सब संग तज ग्रह प्रव्रज्या रम सुतप संयमभाव में।
निर्मोह हो तू वीतरागी लीन हो शुधध्यान में॥१६॥
मोहमोहित मलिन मिथ्यामार्ग में ये भूल जिय।
अज्ञान अर मिथ्यात्व कारण बंधनों को प्राप्त हो॥१७॥
सद्ज्ञानदर्शन जानें देखें द्रव्य अर पर्यायों को।
सम्यक् करे श्रद्धान अर जिय तजे चरणज दोष को॥१८॥
सद्ज्ञानदर्शनचरण होते हैं अमोही जीव को।
अर स्वयं की आराधना से हरें बन्धन शीघ्र वे॥१९॥

सम्यक्त्व के अनुचरण से दुख क्षय करें सब धीरजन।
अर करें वे जिय संख्य और असंख्य गुणमय निर्जरा॥२०॥
सागार अर अनगार से यह द्विविध है संयमचरण।
सागार हों सग्रन्थ अर निर्ग्रन्थ हों अणगार सब॥२१॥
देशव्रत सामायिक प्रोषध सचित निशिभुज त्यागमय।
ब्रह्मचर्य आरम्भ ग्रन्थ तज अनुमति अर उद्देश्य तज॥२२॥
पाँच अणुव्रत तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत कहे।
यह गृहस्थ का संयमचरण इस भांति सब जिनवर कहें॥२३॥
त्रसकायवध अर मृषा चोरी तजे जो स्थूल ही।
परनारि का हो त्याग अर परिमाण परिग्रह का करे॥२४॥

दिशि-विदिश का परिमाण दिग्व्रत अर अनर्थकदण्डव्रत।
परिमाण भोगोपभोग का ये तीन गुणव्रत जिन कहें॥२५॥
सामायिका प्रोषध तथा व्रत अतिथिसंविभाग है।
सल्लेखना ये चार शिक्षाव्रत कहे जिनदेव ने॥२६॥
इस तरह संयमचरण श्रावक का कहा जो सकल है।
अनगार का अब कहूँ संयमचरण जो कि निकल है॥२७॥
संवरण पंचेन्द्रियों का अर पंचव्रत पच्चिस क्रिया।
त्रय गुप्ति समिति पंच संयमचरण है अनगार का॥२८॥
सजीव हो या अजीव हो अमनोज्ञ हो या मनोज्ञ हो।
ना करे उनमें राग-रुस पंच इन्द्रियाँ, संवर कहा॥२९॥

हिंसा असत्य अदत्त अब्रह्मचर्य और परिग्रहा।
इनसे विरति सम्पूर्णतः ही पंच मुनिमहाव्रत कहे।।३०।।
ये महाव्रत निष्पाप हैं अर स्वयं से ही महान हैं।
पूर्व में साधे महाजन आज भी हैं साधते।।३१।।
मनोगुप्ती वचन गुप्ती समिति ईर्या ऐषणा।
आदाननिक्षेपण समिति ये हैं अहिंसा भावना।।३२।।
सत्यव्रत की भावनायें क्रोध लोभरु मोह भय।
अर हास्य से है रहित होना ज्ञानमय आनन्दमय।।३३।।
हो विमोचितवास शून्यागार हो उपरोध बिन।
हो एषणाशुद्धी तथा संवाद हो विसंवाद बिन।।३४।।

त्याग हो आहार पौष्टिक आवास महिलावासमय।
भोगस्मरण महिलावलोकन त्याग हो विकथा कथन।।३५।।
इन्द्रियों के विषय चाहे मनोज्ञ हों अमनोज्ञ हों।
नहीं करना राग-रुस ये अपरिग्रह व्रत भावना।।३६।।
ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपण सही।
एवं प्रतिष्ठापना संयमशोधमय समिती कही।।३७।।
सब भव्यजन संबोधने जिननाथ ने जिनमार्ग में।
जैसा बताया आतमा हे भव्य ! तुम जानो उसे।।३८।।
जीव और अजीव का जो भेद जाने ज्ञानि वह।
रागादि से हो रहित शिवमग यही है जिनमार्ग में।।३९।।

तू जान श्रद्धाभाव से उन चरण-दर्शन-ज्ञान को।
अतिशीघ्र पाते मुक्ति योगी अरे जिनको जानकर॥४०॥
ज्ञानजल में नहा निर्मल शुद्ध परिणति युक्त हो।
त्रैलोक्यचूड़ामणि बने एवं शिवालय वास हो॥४१॥
ज्ञानगुण से हीन इच्छितलाभ को ना प्राप्त हों।
यह जान जानो ज्ञान को गुणदोष को पहिचानने॥४२॥
पर को न चाहें ज्ञानिजन चारित्र में आरूढ़ हो।
अनूपम सुख शीघ्र पावें जान लो परमार्थ से॥४३॥
इसतरह संक्षेप में सम्यक्चरण संयमचरण।
का कथन कर जिनदेव ने उपकृत किये हैं भव्यजन॥४४॥

स्फुट रचित यह चरित पाहुड़ पढ़ो पावन भाव से।
तुम चतुर्गति को पारकर अपुनर्भव हो जाओगे॥४५॥

———o———

अपने भले-बुरे का उत्तरदायित्व प्रत्येक आत्मा का स्वयं का है। कोई किसी का भला-बुरा नहीं कर सकता, पर के भला-बुरा करने का भाव करके यह आत्मा स्वयं ही पुण्य-पाप के चक्कर में उलझ जाता है, बंध जाता है।

– आप कुछ भी कहो, पृष्ठ-१३

बोधपाहुड़

शास्त्रज्ञ हैं सम्यक्त्व संयम शुद्धतप संयुक्त हैं।
कर नमन उन आचार्य को जो कषायों से रहित हैं॥१॥
अर सकलजन संबोधने जिनदेव ने जिनमार्ग में।
छहकाय सुखकर जो कहा वह मैं कहूँ संक्षेप में॥२॥
ये आयतन अर चैत्यगृह अर शुद्ध जिनप्रतिमा कही।
दर्शन तथा जिनबिम्ब जिनमुद्रा विरागी ज्ञान ही॥३॥
हैं देव तीरथ और अर्हन् गुणविशुद्धा प्रव्रज्या।
अरिहंत ने जैसे कहे वैसे कहूँ मैं यथाक्रम॥४॥

आधीन जिनके मन-वचन-तन इन्द्रियों के विषय सब।
कहे हैं जिनमार्ग में वे संयमी ऋषि आयतन ।।५।।
हो गये हैं नष्ट जिनके मोह राग-द्वेष मद।
जिनवर कहें वे महाव्रतधारी ऋषि ही आयतन ।।६।।
जो शुक्लध्यानी और केवलज्ञान से संयुक्त हैं।
अर जिन्हें आतम सिद्ध है वे मुनिवृषभ सिद्धायतन ।।७।।
जानते मैं ज्ञानमय परजीव भी चैतन्यमय।
सद्ज्ञानमय वे महाव्रतधारी मुनी ही चैत्यगृह ।।८।।
मुक्ति-बंधन और सुख-दुःख जानते जो चैत्य वे।
बस इसलिए षट्काय हितकर मुनी ही हैं चैत्यगृह ।।९।।

सद्ज्ञानदर्शनचरण से निर्मल तथा निर्ग्रन्थ मुनि।
की देह ही जिनमार्ग में प्रतिमा कही जिनदेव ने॥१०॥
जो देखे जाने रमे निज में ज्ञानदर्शन चरण से।
उन ऋषीगण की देह प्रतिमा वंदना के योग्य है॥११॥
अनंतदर्शनज्ञानसुख अर वीर्य से संयुक्त हैं।
हैं सदासुखमय देहबिन कर्माष्टकों से युक्त हैं॥१२॥
अनुपम अचल अक्षोभ हैं लोकाग्र में थिर सिद्ध हैं।
जिनवर कथित व्युत्सर्ग प्रतिमा तो यही ध्रुव सिद्ध है॥१३॥
सम्यक्त्व संयम धर्ममय शिवमग बतावनहार जो।
वे ज्ञानमय निर्ग्रन्थ ही दर्शन कहे जिनमार्ग में॥१४॥

दूध घृतमय लोक में अर पुष्प हैं ज्यों गंधमय।
मुनिलिंगमय यह जैनदर्शन त्योंहि सम्यक् ज्ञानमय॥१५॥
जो कर्मक्षय के लिए दीक्षा और शिक्षा दे रहे।
वे वीतरागी ज्ञानमय आचार्य ही जिनबिंब हैं॥१६॥
सद्ज्ञानदर्शन चेतनामय भावमय आचार्य को।
अतिविनय वत्सलभाव से वंदन करो पूजन करो॥१७॥
व्रततप गुणों से शुद्ध सम्यक्भाव से पहिचानते।
दें दीक्षा शिक्षा यही मुद्रा कही है अरिहंत की॥१८॥
निज आतमा के अनुभवी इन्द्रियजयी दृढ़ संयमी।
जीती कषायें जिन्होंने वे मुनी जिनमुद्रा कही॥१९॥

संयमसहित निजध्यानमय शिवमार्ग ही प्राप्तव्य है।
सद्ज्ञान से हो प्राप्त इससे ज्ञान ही ज्ञातव्य है॥२०॥
है असंभव लक्ष्य बिधना बाणबिन अभ्यासबिन।
मुक्तिमग पाना असंभव ज्ञानबिन अभ्यासबिन॥२१॥
मुक्तिमग का लक्ष्य तो बस ज्ञान से ही प्राप्त हो।
इसलिए सविनय करें जन-जन ज्ञान की आराधना॥२२॥
मति धनुष श्रुतज्ञान डोरी रत्नत्रय के बाण हों।
परमार्थ का हो लक्ष्य तो मुनि मुक्तिमग नहीं चूकते॥२३॥
धर्मार्थ कामरु ज्ञान देवे देव जन उसको कहें।
जो हो वही दे नीति यह धर्मार्थ कारण प्रव्रज्या॥२४॥

सब संग का परित्याग दीक्षा दयामय सद्धर्म हो।
अर भव्यजन के उदय कारक मोह विरहित देव हों॥२५॥
सम्यक्त्वव्रत से शुद्ध संवर सहित अर इन्द्रियजयी।
निरपेक्ष आतमतीर्थ में स्नान कर परिशुद्ध हों॥२६॥
यदि शान्त हों परिणाम निर्मलभाव हों जिनमार्ग में।
तो जान लो सम्यक्त्व संयम ज्ञान तप ही तीर्थ है॥२७॥
नाम थापन द्रव्य भावों और गुणपर्यायों से।
च्यवन आगति संपदा से जानिये अरिहंत को॥२८॥
अनंत दर्शन ज्ञानयुत आरूढ़ अनुपम गुणों में।
कर्माष्ट बंधन मुक्त जो वे ही अरे अरिहंत हैं॥२९॥

जन्ममरणजरा चतुर्गतिगमन पापरु पुण्य सब।
दोषोत्पादक कर्म नाशक ज्ञानमय अरिहंत हैं॥३०॥
गुणथान मार्गणथान जीवस्थान अर पर्याप्ति से।
और प्राणों से करो अरहंत की स्थापना॥३१॥
आठ प्रातिहार्य अरु चौंतीस अतिशय युक्त हों।
सयोगकेवलि तेरवें गुणस्थान में अरहंत हों॥३२॥
गति इन्द्रिय कायरु योग वेद कसाय ज्ञानरु संयमा।
दर्शलेश्या भव्य सम्यक् संज्ञिना आहार हैं॥३३॥
आहार तन मन इन्द्रि श्वासोच्छ्वास भाषा छहों इन।
पर्याप्तियों से सहित उत्तम देव ही अरहंत हैं॥३४॥

पंचेन्द्रियों मन-वचन-तन बल और श्वासोच्छ्वास भी।
अर आयु – इन दश प्राणों में अरिहंत की स्थापना।।३५।।
सैनी पंचेन्द्रियों नाम के इस चतुर्दश जीवस्थान में।
अरहंत होते हैं सदा गुणसहित मानवलोक में।।३६।।
व्याधी बुढ़ापा श्वेद मल आहार अर नीहार से।
थूक से दुर्गन्ध से मल-मूत्र से वे रहित हैं।।३७।।
अठ सहस लक्षण सहित हैं अर रक्त है गोक्षीर सम।
दश प्राण पर्याप्ती सहित सर्वांग सुन्दर देह है।।३८।।
इस तरह अतिशयवान निर्मल गुणों से सयुक्त हैं।
अर परम औदारिक श्री अरिहंत की नरदेह है।।३९।।

राग-द्वेष विकार वर्जित विकल्पों से पार हैं।
कषायमल से रहित केवलज्ञान से परिपूर्ण हैं॥४०॥
सद्दृष्टि से सम्पन्न अर सब द्रव्य-गुण-पर्याय को।
जो देखते अर जानते जिननाथ वे अरिहंत हैं॥४१॥
शून्यघर तरुमूल वन उद्यान और मसान में।
वसतिका में रहें या गिरिशिखर पर गिरिगुफा में॥४२॥
चैत्य आलय तीर्थ वच स्ववशासक्तस्थान में।
जिनभवन में मुनिवर रहें जिनवर कहें जिनमार्ग में॥४३॥
इन्द्रियजयी महाव्रतधनी निरपेक्ष सारे लोक से।
निजध्यानरत स्वाध्यायरत मुनिश्रेष्ठ ना इच्छा करें॥४४॥

परिषहजयी जितकषायी निर्ग्रन्थ है निर्मोह है।
है मुक्त पापारंभ से ऐसी प्रव्रज्या जिन कही ॥४५॥
धन-धान्य पट अर रजत-सोना आसनादिक वस्तु के।
भूमि चंवर-छत्रादि दानों से रहित हो प्रव्रज्या ॥४६॥
जिनवर कही है प्रव्रज्या समभाव लाभालाभ में।
अर कांच-कंचन मित्र-अरि निन्दा-प्रशंसा भाव में ॥४७॥
प्रव्रज्या जिनवर कही सम्पन्न हों असंपन्न हों।
उत्तम मध्यम घरों में आहार लें समभाव से ॥४८॥
निर्ग्रन्थ है निःसंग है निर्मान है नीराग है।
निर्दोष है निरआश है जिन प्रव्रज्या ऐसी कही ॥४९॥

निर्लोभ है निर्मोह है निष्कलुष है निर्विकार है।
निस्नेह निर्मल निराशा जिन प्रव्रज्या ऐसी कही।।५०।।
शान्त है है निरायुध नग्नत्व अवलम्बित भुजा।
आवास परकृत निलय में जिन प्रव्रज्या ऐसी कही।।५१।।
उपशम क्षमा दम युक्त है श्रृंगारवर्जित रूक्ष है।
मदरागरुस से रहित है जिनप्रव्रज्या ऐसी कही।।५२।।
मूढ़ता विपरीतता मिथ्यापने से रहित है।
सम्यक्त्व गुण से शुद्ध है जिन प्रवज्या ऐसी कही।।५३।।
जिनमार्ग में यह प्रव्रज्या निर्ग्रन्थता से युक्त है।
भव्य भावे भावना यह कर्मक्षय कारण कही।।५४।।

जिसमें परिग्रह नहीं अन्तर्बाह्य तिलतुषमात्र भी।
सर्वज्ञ के जिनमार्ग में जिनप्रव्रज्या ऐसी कही।।५५।।
परिषह सहें उपसर्ग जीतें रहें निर्जन देश में।
शिला पर या भूमितल पर रहें वे सर्वत्र ही।।५६।।
पशु-नपुंसक-महिला तथा कुस्शीलजन की संगति।
ना करें विकथा ना करें रत रहें अध्ययन-ध्यान में।।५७।।
सम्यक्त्व संयम तथा व्रत-तप गुणों से सुविशुद्ध हो।
शुद्ध हो सद्गुणों से जिन प्रव्रज्या ऐसी कही।।५८।।
आयतन से प्रव्रज्या तक यह कथन संक्षेप में।
सुविशुद्ध समकित सहित दीक्षा यों कही जिनमार्ग में।।५९।।

षट्काय हितकर जिसतरह ये कहे हैं जिनदेव ने।
बस उसतरह ही कहे हमने भव्यजन संबोधने ॥६०॥
जिनवरकथित शब्दत्वपरिणत समागत जो अर्थ है।
बस उसे ही प्रस्तुत किया भद्रबाहु के इस शिष्य ने॥६१॥
अंग बारह पूर्व चउदश के विपुल विस्तार विद।
श्री भद्रबाहु गमकगुरु जयवंत हो इस जगत में॥६२॥

———o———

पर को जानना आत्मा का स्वभाव है। पर को तो मात्र जानना ही है अपने को जानना भी है, पहिचानना भी है, उसी में जमना भी है, रमना भी है। – गागर में सागर, पृष्ठ-६४

भावपाहुड़

सुर-असुर-इन्द्र-नरेन्द्र वंदित सिद्ध जिनवरदेव अर।
सब संयतों को नमन कर इस भावपाहुड़ को कहूँ॥१॥
बस भाव ही गुण-दोष के कारण कहे जिनदेव ने।
भावलिंग ही परधान हैं द्रव्यलिंग न परमार्थ है॥२॥
अर भावशुद्धि के लिए बस परीग्रह का त्याग हो।
रागादि अन्तर में रहें तो विफल समझो त्याग सब॥३॥
वस्त्रादि सब परित्याग कोड़ाकोड़ि वर्षों तप करें।
पर भाव बिन ना सिद्धि हो सत्यार्थ यह जिनवर कहें॥४॥

परिणामशुद्धि के बिना यदि परीग्रह सब छोड़ दें।
तब भी अरे निज आत्महित का लाभ कुछ होगा नहीं।।५।।
प्रथम जानो भाव को तुम भाव बिन द्रवलिंग से।
तो लाभ कुछ होता नहीं पथ प्राप्त हो पुरुषार्थ से।।६।।
भाव बिन द्रवलिंग अगणित धरे काल अनादि से।
पर आजतक हे आत्मन् ! सुख रंच भी पाया नहीं।।७।।
भीषण नरक तिर्यंच नर अर देवगति में भ्रमण कर।
पाये अनन्ते दुःख अब भावो जिनेश्वर भावना।।८।।
इन सात नरकों में सतत चिरकाल तक हे आत्मन्।
दारुण भयंकर अर असह्य महान दुःख तूने सहे।।९।।

तिर्यंचगति में खनन उत्तापन जलन अर छेदना।
रोकना वध और बंधन आदि दुख तूने सहे॥१०॥
मानसिक देहिक सहज एवं अचानक आ पड़े।
ये चतुर्विध दुख मनुजगति में आत्मन् तूने सहे॥११॥
हे महायश सुरलोक में परसंपदा लखकर जला।
देवांगना के विरह में विरहाग्नि में जलता रहा॥१२॥
पंचविध कांदर्पि आदि भावना भा अशुभतम।
मुनि द्रव्यलिंगीदेव हों किल्विषिक आदिक अशुभतम॥१३॥
पार्श्वस्थ आदि कुभावनायें भवदुःखों की बीज जो।
भाकर उन्हें दुख विविध पाये विविध वार अनादि से॥१४॥

निज हीनता अर विभूति गुण-ऋद्धि महिमा अन्य की।
लख मानसिक संताप हो है यह अवस्था देव की॥१५॥
चतुर्विध विकथा कथा आसक्त अर मदमत्त हो।
यह आतमा बहुबार हीन कुदेवपन को प्राप्त हो॥१६॥
फिर अशुचितम वीभत्स जननी गर्भ में चिरकाल तक।
दुख सहे तूने आजतक अज्ञानवश हे मुनिप्रवर॥१७॥
अरे तू नरलोक में अगणित जनम धर-धर जिया।
हो उदधि जल से भी अधिक जो दूध जननी का पिया॥१८॥
तेरे मरण से दुखित जननी नयन से जो जल बहा।
वह उदधिजल से भी अधिक यह वचन जिनवर ने कहा॥१९॥

ऐसे अनन्ते भव धरे नरदेह के नख-केश सब।
यदि करे कोई इकट्ठे तो ढेर होवे मेरु सम॥२०॥
परवश हुआ यह रह रहा चिरकाल से आकाश में।
थल अनल जल तरु अनिल उपवन गहन वन गिरि गुफा में॥२१॥
पुद्गल सभी भक्षण किये उपलब्ध हैं जो लोक में।
बहु बार भक्षण किये पर तृप्ति मिली न रंच भी॥२२॥
त्रैलोक्य में उपलब्ध जल सब तृषित हो तूने पिया।
पर प्यास फिर भी ना बुझी अब आत्मचिंतन में लगो॥२३॥
जिस देह में तू रम रहा ऐसी अनन्ती देह तो।
मूरख अनेकों बार तूने प्राप्त करके छोड़ दीं॥२४॥

शस्त्र श्वासनिरोध एवं रक्तक्षय संक्लेश से।
अर जहर से भय वेदना से आयुक्षय हो मरण हो।।२५।।
अनिल जल से शीत से पर्वतपतन से वृक्ष से।
परधनहरण परगमन से कुमरण अनेक प्रकार हो।।२६।।
हे मित्र ! इस विधि नरगति में और गति तिर्यंच में।
बहुविध अनंते दुःख भोगे भयंकर अपमृत्यु के।।२७।।
इस जीव ने नीगोद में अन्तरमुहूरत काल में।
छ्यासठ सहस अर तीन सौ छत्तीस भव धारण किये।।२८।।
विकलत्रयों के असी एवं साठ अर चालीस भव।
चौबीस भव पंचेन्द्रियों अन्तरमुहूरत छुद्रभव।।२९।।

रतन त्रय के बिना होता रहा है यह परिणमन।
तुम रतन त्रय धारण करो बस यही है जिनवर कथन।।३०।।
निज आतमा को जानना सद्ज्ञान रमना चरण है।
निज आतमारत जीव सम्यग्दृष्टि जिनवर कथन है।।३१।।
तूने अनन्ते जनम में कुमरण किये हे आत्मन्।
अब तो समाधिमरण की भा भावना भवनाशनी।।३२।।
धरकर दिगम्बर वेष बारम्बार इस त्रैलोक में।
स्थान कोई शेष ना जन्मा-मरा ना हो जहाँ।।३३।।
रे भावलिंग बिना जगत में अरे काल अनंत से।
हा ! जन्म और जरा-मरण के दुःख भोगे जीव ने।।३४।।

परिणाम पुद्गल आयु एवं समय काल प्रदेश में।
तनरूप पुद्गल ग्रहे-त्यागे जीव ने इस लोक में॥३५॥
बिन आठ मध्यप्रदेश राजू तीन सौ चालीस त्रय।
परिमाण के इस लोक में जन्मा-मरा न हो जहाँ॥३६॥
एक-एक अंगुलि में जहाँ पर छयानवें हों व्याधियाँ।
तब पूर्ण तन में तुम बताओ होंगी कितनी व्याधियाँ॥३७॥
पूर्वभव में सहे परवश रोग विविध प्रकार के।
अर सहोगे बहु भाँति अब इससे अधिक हम क्या कहें?॥३८॥
कृमिकलित मज्जा-मांस-मज्जित मलिन महिला उदर में।
नवमास तक कई बार आतम तू रहा है आजतक॥३९॥

तू रहा जननी उदर में जो जननि ने खाया-पिया।
उच्छिष्ट उस आहार को ही तू वहाँ खाता रहा।।४०।।
शिशुकाल में अज्ञान से मल-मूत्र में सोता रहा।
अब अधिक क्या बोलें अरे मल-मूत्र ही खाता रहा।।४१।।
यह देह तो बस हड्डियों श्रोणित बसा अर माँस का।
है पिण्ड इसमें तो सदा मल-मूत्र का आवास है।।४२।।
परिवारमुक्ती मुक्ति ना मुक्ती वही जो भाव से।
यह जानकर हे आत्मन् ! तू छोड़ अन्तरवासना।।४३।।
बाहुबली ने मान बस घरवार ही सब छोड़कर।
तप तपा बारह मास तक ना प्राप्ति केवलज्ञान की।।४४।।

तज भोजनादि प्रवृत्तियाँ मुनिपिंगला रे भावविन।
अरे मात्र निदान से पाया नहीं श्रमणत्व को ॥४५॥
इस ही तरह मुनि वशिष्ठ भी इस लोक में थानक नहीं।
रे एक मात्र निदान से घूमा नहीं हो वह जहाँ ॥४६॥
चौरासिलख योनीविषें है नहीं कोई थल जहाँ।
रे भावबिन द्रवलिंगधर घूमा नहीं हो तू जहाँ ॥४७॥
भाव से ही लिंगी हो द्रवलिंग से लिंगी नहीं।
लिंगभाव ही धारण करो द्रवलिंग से क्या कार्य हो ॥४८॥
जिनलिंग धरकर बाहुमुनि निज अंतरंग कषाय से।
दण्डकनगर को भस्मकर रौरव नरक में जा पड़े ॥४९॥

इस ही तरह द्रवलिंगी द्वीपायन मुनी भी भ्रष्ट हो।
दुर्गति गमनकर दुख सहे अर अनंत संसारी हुए।।५०।।
शुद्धबुद्धी भावलिंगी अंगनाओं से घिरे।
होकर भी शिवकुमार मुनि संसारसागर तिर गये।।५१।।
अभविसेन ने केवलि प्ररूपित अंग ग्यारह भी पढ़े।
पर भावलिंग बिना अरे संसारसागर न तिरे।।५२।।
कहाँ तक बतावें अरे महिमा तुम्हें भावविशद्धि की।
तुषमास पद को घोखते शिवभूति केवलि हो गये।।५३।।
भाव से हो नग्न तन से नग्नता किस काम की।
भाव एवं द्रव्य से हो नाश कर्मकलंक का।।५४।।

भाव विरहित नग्नता कुछ कार्यकारी है नहीं।
यह जानकर भाओ निरन्तर आतम की भावना।।५५।।
देहादि के संग से रहित अर रहित मान कषाय से।
अर आतमारत सदा ही जो भावलिंगी श्रमण वह।।५६।।
निज आत्म का अवलम्ब ले मैं और सबको छोड़ दूँ।
अर छोड़ ममताभाव को निर्ममत्व को धारण करूँ।।५७।।
निज ज्ञान में है आतमा दर्शन चरण में आतमा।
और संवर योग प्रत्याख्यान में है आतमा।।५८।।
अरे मेरा एक शाश्वत आतमा दृगज्ञानमय।
अवशेष जो हैं भाव वे संयोगलक्षण जानने।।५९।।

चतुर्गति से मुक्त हो यदि शाश्वत सुख चाहते।
तो सदा निर्मलभाव से ध्याओ श्रमण शुद्धातमा।।६०।।
जो जीव जीवस्वभाव को सुधभाव से संयुक्त हो।
भावे सदा वह जीव ही पावे अमर निर्वाण को।।६१।।
चेतना से सहित ज्ञानस्वभावमय यह आतमा।
कर्मक्षय का हेतु यह है यह कहें परमातमा।।६२।।
जो जीव के सद्भाव को स्वीकारते वे जीव ही।
निर्देह निर्वच और निर्मल सिद्धपद को पावते।।६३।।
चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है।
जानो अलिंगग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है।।६४।।

अज्ञान नाशक पंचविध जो ज्ञान उसकी भावना।
भा भाव से हे आत्मन् ! तो स्वर्ग-शिवसुख प्राप्त हो।।६५।।
श्रमण श्रावकपने का है मूल कारण भाव ही।
क्योंकि पठन अर श्रवण से भी कुछ नहीं हो भावबिन।।६६।।
द्रव्य से तो नग्न सब नर नारकी तिर्यंच हैं।
पर भावशुद्धि के बिना श्रमणत्व को पाते नहीं।।६७।।
हों नग्न पर दुख सहें अर संसारसागर में रुलें।
जिन भावना बिन नग्नतन भी बोधि को पाते नहीं।।६८।।
मान मत्सर हास्य ईर्ष्या पापमय परिणाम हों।
तो हे श्रमण तननगन होने से तुझे क्या साध्य है।।६९।।

हे आत्मन् जिनलिंगधर तू भावशुद्धी पूर्वक।
भावशुद्धि के बिना जिनलिंग भी हो निरर्थक।।७०।।
सद्धर्म का न वास जह तह दोष का आवास है।
है निरर्थक निष्फल सभी सद्ज्ञान बिन हे नटश्रमण।।७१।।
जिनभावना से रहित रागी संग से संयुक्त जो।
निर्ग्रन्थ हों पर बोधि और समाधि को पाते नहीं।।७२।।
मिथ्यात्व का परित्याग कर हो नग्न पहले भाव से।
आज्ञा यही जिनदेव की फिर नग्न होवे द्रव्य से।।७३।।
हो भाव से अपवर्ग एवं भाव से ही स्वर्ग हो।
पर मलिनमन अर भाव विरहित श्रमण तो तिर्यंच हो।।७४।।

सुभाव से ही प्राप्त करते बोधि अर चक्रेश पद।
नर अमर विद्याधर नमें जिनको सदा कर जोड़कर।।७५।।
शुभ अशुभ एवं शुद्ध इसविधि भाव तीन प्रकार के।
रौद्रार्त तो हैं अशुभ किन्तु शुभ धरममय ध्यान है।।७६।।
निज आत्मा का आत्मा में रमण शुद्धस्वभाव है।
जो श्रेष्ठ है वह आचरो जिनदेव का आदेश यह।।७७।।
गल गये जिसके मान मिथ्या मोह वह समचित्त ही।
त्रिभुवन में सार ऐसे रत्नत्रय को प्राप्त हो।।७८।।
जो श्रमण विषयों से विरत वे सोलहकारणभावना।
भा तीर्थंकर नामक प्रकृति को बाँधते अतिशीघ्र ही।।७९।।

तेरह क्रिया तप वार विध भा विविध मनवचकाय से।
हे मुनिप्रवर ! मन मत्त गज वश करो अंकुश ज्ञान से॥८०॥
वस्त्र विरहित क्षिति शयन भिक्षा असन संयम सहित।
जिन लिंग निर्मल भाव भावित भावना परिशुद्ध है॥८१॥
ज्यों श्रेष्ठ चंदन वृक्ष में हीरा रतन में श्रेष्ठ है।
त्यों धर्म में भवभाविनाशक एक ही जिनधर्म है॥८२॥
व्रत सहित पूजा आदि सब जिनधर्म में सत्कर्म हैं।
दृगमोह-क्षोभ विहीन निज परिणाम आतमधर्म है॥८३॥
अर पुण्य भी है धर्म – ऐसा जान जो श्रद्धा करें।
वे भोग की प्राप्ति करें पर कर्म क्षय न कर सकें॥८४॥

रागादि विरहित आतमा रत आतमा ही धर्म है।
भव तरण-तारण धर्म यह जिनवर कथन का मर्म है॥८५॥
जो नहीं चाहे आतमा अर पुण्य ही करता रहे।
वह मुक्ति को पाता नहीं संसार में रुलता रहे॥८६॥
इसलिए पूरी शक्ति से निज आतमा को जानकर।
श्रद्धा करो उसमें रमो नित मुक्तिपद पा जाओगे॥८७॥
सप्तम नरक में गया तन्दुल मत्स्य हिंसक भाव से।
यह जानकर हे आत्मन् ! नित करो आतमभावना॥८८॥
आतमा की भावना बिन गिरि-गुफा आवास सब।
अर ज्ञान अध्ययन आदि सब करनी निरर्थक जानिये॥८९॥

इन लोकरंजक बाह्यव्रत से अरे कुछ होगा नहीं।
इसलिए पूर्ण प्रयत्न से मन इन्द्रियों को वश करो॥९०॥
मिथ्यात्व अर नोकषायों को तजो शुद्ध स्वभाव से।
देव प्रवचन गुरु की भक्ति करो आदेश यह॥९१॥
तीर्थंकरों ने कहा गणधरदेव ने गूँथा जिसे।
शुद्धभाव से भावो निरन्तर उस अतुल श्रुतज्ञान को॥९२॥
श्रुतज्ञानजल के पान से ही शान्त हो भवदुखतृषा।
त्रैलोक्यचूड़ामणी शिवपद प्राप्त हो आनन्दमय॥९३॥
जिनवरकथित बाईस परीषह सहो नित समचित्त हो।
बचो संयमघात से हे मुनि ! नित अप्रमत्त हो॥९४॥

जल में रहे चिरकाल पर पत्थर कभी भिदता नहीं।
त्यों परीषह उपसर्ग से साधु कभी भिदता नहीं।।९५।।
भावना द्वादश तथा पच्चीस व्रत की भावना।
भावना बिन मात्र कोरे वेष से क्या लाभ है।।९६।।
है सर्वविरती तथापि तत्त्वार्थ की भा भावना।
गुणथान जीवसमास की भी तू सदा भा भावना।।९७।।
भयंकर भव-वन विषैं भ्रमता रहा आशक्त हो।
बस इसलिए नवकोटि से ब्रह्मचर्य को धारण करो।।९८।।
भाववाले साधु साधे चतुर्विध आराधना।
पर भाव विरहित भटकते चिरकाल तक संसार में।।९९।।

तिर्यंच मनुज कुदेव होकर द्रव्यलिंगी दुःख लहें।
पर भावलिंगी सुखी हों आनन्दमय अपवर्ग में ॥१००॥
अशुद्धभावों से छियालिस दोष दूषित असन कर।
तिर्यंचगति में दुख अनेकों बार भोगे विवश हो ॥१०१॥
अतिगृद्धता अर दर्प से रे सचित्त भोजन पान कर।
अति दुःख पाये अनादि से इसका भी जरा विचार कर ॥१०२॥
अर कंद मूल बीज फूल पत्र आदि सचित्त सब।
सेवन किये मदमत्त होकर भ्रमे भव में आजतक ॥१०३॥
विनय पंच प्रकार पालो मन वचन अर काय से।
अविनयी को मुक्ति की प्राप्ति कभी होती नहीं ॥१०४॥

निजशक्ति केअनुसार प्रतिदिन भक्तिपूर्वक चाव से।
हे महायश ! तुम करो वैयावृत्ति दशविध भाव से।।१०५।।
अरे मन वचन काय से यदि हो गया कुछ दोष तो।
मान माया त्याग कर गुरु के समक्ष प्रगट करो।।१०६।।
निष्ठुर कटुक दुर्जन वचन सत्पुरुष सहें स्वभाव से।
सब कर्मनाशन हेतु तुम भी सहो निर्ममभाव से।।१०७।।
अर क्षमा मंडित मुनि प्रकट ही पाप सब खण्डित करें।
७सुरपति उरग-नरनाथ उनके चरण में वंदन करें।।१०८।।
यह जानकर हे क्षमागुणमुनि ! मन-वचन अर काय से।
सबको क्षमा कर बुझा दो क्रोधादि क्षमास्वभाव से।।१०९।।

असार है संसार सब यह जान उत्तम बोधि की।
अविकार मन से भावना भा अरे दीक्षाकाल सम॥११०॥
अंतरंग शुद्धिपूर्वक तू चतुर्विध द्रवलिंग धर।
क्योंकि भाव बिना द्रवलिंग कार्यकारी है नहीं॥१११॥
आहार भय मैथुन परीग्रह चार संज्ञा धारकर।
भ्रमा भववन में अनादिकाल से हो अन्य वश॥११२॥
भावशुद्धिपूर्वक पूजादि लाभ न चाहकर।
निज शक्ति से धारण करो आतपन आदि योग को॥११३॥
प्रथम द्वितीय तृतीय एवं चतुर्थ पंचम तत्त्व की।
आद्यन्तरहित त्रिवर्ग हर निज आत्मा की भावना॥११४॥

भावों निरन्तर बिना इसके चिन्तवन अर ध्यान के।
जरा-मरण से रहित सुखमय मुक्ति की प्राप्ति नहीं॥११५॥
परिणाम से ही पाप सब अर पुण्य सब परिणाम से।
यह जैनशासन में कहा बंधमोक्ष भी परिणाम से॥११६॥
जिनवच परान्मुख जीव यह मिथ्यात्व और कषाय से।
ही बांधते हैं करम अशुभ असंयम से योग से॥११७॥
भावशुद्धीवंत अर जिन-वचन अराधक जीव ही।
हैं बाँधते शुभकर्म यह संक्षेप में बंधन-कथा॥११८॥
अष्टकर्मों से बंधा हूँ अब इन्हें मैं दग्धकर।
ज्ञानादिगुण की चेतना निज में अनंत प्रकट करूँ॥११९॥

शील अठदशसहस उत्तर गुण कहे चौरासी लख।
भा भावना इन सभी की इससे अधिक क्या कहें हम॥१२०॥
रौद्रार्त वश चिरकाल से दुःख सहे अगणित आजतक।
अब तज इन्हें ध्या धरमसुखमय शुक्ल भव के अन्ततक॥१२१॥
इन्द्रिय-सुखाकुल द्रव्यलिंगी कर्मतरु नहिं काटते।
पर भावलिंगी भवतरु को ध्यान करवत काटते॥१२२॥
ज्यों गर्भगृह में दीप जलता पवन से निर्बाध हो।
त्यों जले निज में ध्यान दीपक राग से निर्बाध हो॥१२३॥
शुद्धात्म एवं पंचगुरु का ध्यान धर इस लोक में।
वे परम मंगल परम उत्तम और वे ही हैं शरण॥१२४॥

आनन्दमय मृतु जरा व्याधि वेदना से मुक्त जो।
वह ज्ञानमय शीतल विमल जल पियो भविजन भाव से॥१२५॥
ज्यों बीज के जल जाने पर अंकुर नहीं उत्पन्न हो।
कर्मबीज के जल जाने पर न भवांकुर उत्पन्न हो॥१२६॥
भावलिंगी सुखी होते द्रव्यलिंगी दुःख लहें।
गुण-दोष को पहिचानकर सब भाव से मुनिपद गहें॥१२७॥
भाव से जो हैं श्रमण जिनवर कहें संक्षेप में।
सब अभ्युदय के साथ ही वे तीर्थकर गणधर बनें॥१२८॥
जो ज्ञान-दर्शन-चरण से हैं शुद्ध माया रहित हैं।
रे धन्य हैं वे भावलिंगी संत उनको नमन है॥१२९॥

जो धीर हैं गम्भीर हैं जिन भावना से सहित हैं।
वे ऋद्धियों में मुग्ध न हों अमर विद्याधरों की॥१३०॥
इन ऋद्धियों से इसतरह निरपेक्ष हों जो मुनि धवल।
क्यों अरे चाहें वे मुनी निस्सार नरसुर सुखों को॥१३१॥
करले भला तबतलक जबतक वृद्धपन आवे नहीं।
अरे देह में न रोग हो बल इन्द्रियों का ना घटे॥१३२॥
छह काय की रक्षा करो षट् अनायतन को त्यागकर।
और मन-वच-काय से तू ध्या सदा निज आतमा॥१३३॥
भवभ्रमण करते आजतक मन-वचन एवं काय से।
दश प्राणों का भोजन किया निज पेट भरने के लिये॥१३४॥

इन प्राणियों के घात से योनी चौरासी लाख में।
बस जन्मते मरते हुये, दुख सहे तूने आजतक ।।१३५।।
यदि भवभ्रमण से ऊबकर तू चाहता कल्याण है।
तो मन वचन अर काय से सब प्राणियों को अभय दे।।१३६।।
अक्रियावादी चुरासी बत्तीस विनयावादि हैं ।
सौ और अस्सी क्रियावादी सरसठ अरे अज्ञानि हैं।।१३७।।
गुड़-दूध पीकर सर्प ज्यों विषरहित होता है नहीं ।
अभव्य त्यों जिनधर्म सुन अपना स्वभाव तजे नहीं।।१३८।।
मिथ्यात्व से आछन्नबुद्धि अभव्य दुर्मति दोष से।
जिनवरकथित जिनधर्म की श्रद्धा कभी करता नहीं।।१३९।।

तप तपें कुत्सित और कुत्सित साधु की भक्ति करें।
कुत्सित गति को प्राप्त हों रे मूढ़ कुत्सितधर्मरत ।।१४०।।
कुनय अर कुशास्त्र मोहित जीव मिथ्यावास में ।
घूमा अनादिकाल से हे धीर ! सोच विचार कर।।१४१।।
तीन शत त्रिषष्ठि पाखण्डी मतों को छोड़कर ।
जिनमार्ग में मन लगा इससे अधिक मुनिवर क्या कहें ।।१४२।।
अरे समकित रहित साधु सचल मुरदा जानियें ।
अपूज्य है ज्यों लोक में शव त्योंहि चलशव मानिये।।१४३।।
तारागणों में चन्द्र ज्यों अर मृगों में मृगराज ज्यों।
श्रमण-श्रावक धर्म में त्यों एक समकित जानिये।।१४४।।

नागेन्द्र के शुभ सहसफण में शोभता माणिक्य ज्यों।
अरे समकित शोभता त्यों मोक्ष के मारग विषैं।।१४५।।
चन्द्र तारागण सहित ही लसे नभ में जिसतरह।
व्रत तप तथा दर्शन सहित जिनलिंग शोभे उसतरह।।१४६।।
इमि जानकर गुण-दोष मुक्ति महल की सीढ़ी प्रथम।
गुण रतन में सार समकित रतन को धारण करो ।।१४७।।
देहमित अर कर्त्ता-भोक्ता जीव दर्शन-ज्ञानमय।
अनादि अनिधन अमूर्तिक कहा जिनवर देव ने ।।१४८।।
जिन भावना से सहित भवि दर्शनावरण-ज्ञानावरण।
अर मोहनी अन्तराय का जड़ मूल से मर्दन करें।।१४९।।

हो घातियों का नाश दर्शन-ज्ञान-सुख-बल अनंते।
हो प्रगट आतम माहिं लोकालोक आलोकित करें॥१५०॥
यह आत्मा परमात्मा शिव विष्णु ब्रह्मा बुद्ध है।
ज्ञानि है परमेष्ठि है सर्वज्ञ कर्म विमुक्त है॥१५१॥
घन-घाति कर्म विमुक्त अर त्रिभुवनसदन संदीप जो।
अर दोष अष्टादश रहित वे देव उत्तम बोधि दें ॥१५२॥
जिनवर चरण में नमें जो नर परम भक्तिभाव से ।
वर भाव से वे उखाड़े भवबेलि को जड़मूल से ॥१५३॥
जल में रहें पर कमल पत्ते लिप्त होते हैं नहीं ।
सत्पुरुष विषय-कषाय में त्यों लिप्त होते हैं नहीं ॥१५४॥

सब शील संयम गुण सहित जो उन्हें हम मुनिवर कहें।
बहु दोष के आवास जो हैं अरे श्रावक सम न वे ॥१५५॥
जीते जिन्होंने प्रबल दुर्द्धर अर अजेय कषाय भट।
रे क्षमादम तलवार से वे धीर हैं वे वीर हैं ॥१५६॥
विषय सागर में पड़े भवि ज्ञान-दर्शन करों से।
जिनने उतारे पार जग में धन्य हैं भगवंत वे ॥१५७॥
पुष्पित विषयमय पुष्पों से अर मोहवृक्षारूढ़ जो।
अशेष माया बेलि को मुनि ज्ञानकरवत काटते ॥१५८॥
मोहमद गौरवरहित करुणासहित मुनिराज जो।
अरे पापस्तंभ को चारित खड़ग से काटते ॥१५९॥

सद्गुणों की मणिमाल जिनमत गगन में मुनि निशाकर।
तारावली परिवेष्ठित हैं शोभते पूर्णेन्दु सम ।।१६०।।
चक्रधर बलराम केशव इन्द्र जिनवर गणपति ।
अर ऋद्धियों को पा चुके जिनके हैं भाव विशुद्धवर ।।१६१।।
जो अमर अनुपम अतुल शिव अर परम उत्तम विमल है।
पा चुके ऐसा मुक्ति सुख जिनभावना भा नेक नर ।।१६२।।
जो निरंजन हैं नित्य हैं त्रैलोक्य महिमावंत हैं ।
वे सिद्ध दर्शन-ज्ञान अर चारित्र शुद्धि दें हमें ।।१६३।।
इससे अधिक क्या कहें हम धर्मार्थकाम रु मोक्ष में ।
या अन्य सब ही कार्य में है भाव की ही मुख्यता ।।१६४।।

इस तरह यह सर्वज्ञ भासित भावपाहुड जानिये ।
भाव से जो पढ़ें अविचल थान को वे पायेंगे ॥१६५॥

—— o ——

यदि हम इस भगवान आत्मा को न समझ सके, इसका अनुभव न कर सके तो सबकुछ समझकर भी नासमझ ही हैं, सबकुछ पढ़कर भी अपढ़ ही हैं, सबकुछ अनुभव करके भी अनुभवहीन ही हैं, सबकुछ पाकर भी अभी कुछ नहीं पाया है – यही समझना।

– गागर में सागर, पृष्ठ-४५

मोक्षपाहुड़

परद्रव्य को परित्याग पाया ज्ञानमय निज आतमा ।
शत बार उनको हो नमन निष्कर्म जो परमातमा ॥१॥
परमपदथित शुध अपरिमित ज्ञान-दर्शनमय प्रभु ।
को नमन कर हे योगिजन ! परमात्म का वर्णन करुँ ॥२॥
योगस्थ योगीजन अनवरत अरे ! जिसको जान कर।
अनंत अव्याबाध अनुपम मोक्ष की प्राप्ति करें ॥३॥
त्रिविध आतमराम में बहिरातमापन त्यागकर ।
अन्तरात्म के आधार से परमात्मा का ध्यान धर ॥४॥

ये इन्द्रियाँ बहिरात्मा अनुभूति अन्तर आतमा ।
जो कर्ममल से रहित हैं वे देव हैं परमातमा ॥५॥
है परमजिन परमेष्ठी है शिवंकर जिन शास्वता ।
केवल अनिन्द्रिय सिद्ध है कल-मलरहित शुद्धातमा ॥६॥
जिनदेव का उपदेश यह बहिरातमापन त्यागकर ।
अरे ! अन्तर आतमा परमात्मा का ध्यान धर ॥७॥
निजरूप से च्युत बाह्य में स्फुरितबुद्धि जीव यह ।
देहादि में अपनत्व कर बहिरात्मपन धारण करे ॥८॥
निज देहसम परदेह को भी जीव जानें मूढ़जन ।
उन्हें चेतन जान सेवें यद्यपि वे अचेतन ॥९॥

निजदेह को निज-आतमा परदेह को पर-आतमा ।
ही जानकर ये मूढ़ सुत-दारादि में मोहित रहें ॥१०॥
कुज्ञान में रत और मिथ्याभाव से भावित श्रमण ।
मद-मोह से आच्छन्न भव-भव देह को ही चाहते ॥११॥
जो देह से निरपेक्ष निर्मम निरारंभी योगिजन ।
निर्द्वन्द रत निजभाव में वे ही श्रमण मुक्ति वरें ॥१२॥
परद्रव्य में रत बंधें और विरक्त शिवरमणी वरें ।
जिनदेव का उपदेश बंध-अबंध का संक्षेप में ॥१३॥
नियम से निज द्रव्य में रत श्रमण सम्यकवंत हैं ।
सम्यक्त्व-परिणत श्रमण ही क्षय करें करमानन्त हैं ॥१४॥

किन्तु जो परद्रव्य रत वे श्रमण मिथ्यादृष्टि हैं ।
मिथ्यात्व परिणत वे श्रमण दुष्टाष्ट कर्मों से बंधें ॥१५॥
परद्रव्य से हो दुर्गति निजद्रव्य से होती सुगति ।
यह जानकर रति करो निज में अर करो पर से विरति ॥१६॥
जो आतमा से भिन्न चित्ताचित्त एवं मिश्र हैं ।
उन सर्वद्रव्यों को अरे ! परद्रव्य जिनवर ने कहा ॥१७॥
दुष्टाष्ट कर्मों से रहित जो ज्ञानविग्रह शुद्ध है ।
वह नित्य अनुपम आतमा स्वद्रव्य जिनवर ने कहा ॥१८॥
पर द्रव्य से हो पराङ्मुख निज द्रव्य को जो ध्यावते ।
जिनमार्ग में संलग्न वे निर्वाणपद को प्राप्त हों ॥१९॥

शुद्धात्मा को ध्यावते जो योगि जिनवरमत विषैं ।
निर्वाणपद को प्राप्त हों तब क्यों न पावें स्वर्ग वे ॥२०॥
गुरु भार लेकर एक दिन में जाँय जो योजन शतक ।
जावे न क्यों क्रोशार्द्ध में इस भुवनतल में लोक में ॥२१॥
जो अकेला जीत ले जब कोटिभट संग्राम में ।
तब एक जन को क्यों न जीते वह सुभट संग्राम में ॥२२॥
शुभभाव-तप से स्वर्ग-सुख सब प्राप्त करते लोक में ।
पाया सो पाया सहजसुख निजध्यान से परलोक में ॥२३॥
ज्यों शोधने से शुद्ध होता स्वर्ण बस इसतरह ही ।
हो आतमा परमातमा कालादि लब्धि प्राप्त कर ॥२४॥

ज्यों धूप से छाया में रहना श्रेष्ठ है बस उसतरह ।
अव्रतों से नरक व्रत से स्वर्ग पाना श्रेष्ठ है ।।२५।।
जो भव्यजन संसार-सागर पार होना चाहते ।
वे कर्म ईंधन-दहन निज शुद्धात्मा को ध्यावते ।।२६।।
अरे मुनिजन मान-मद आदिक कषायें छोड़कर ।
लोक के व्यवहार से हों विरत ध्याते आतमा ।।२७।।
मिथ्यात्व एवं पाप-पुन अज्ञान तज मन-वचन से ।
अर मौन रह योगस्थ योगी आतमा को ध्यावते ।।२८।।
दिखाई दे जो मुझे वह रूप कुछ जाने नहीं ।
मैं करूँ किससे बात मैं तो एक ज्ञायकभाव हूँ ।।२९।।

सर्वास्रवों के रोध से संचित करम खप जाय सब ।
जिनदेव के इस कथन को योगस्थ योगी जानते ।।३०।।
जो सो रहा व्यवहार में वह जागता निज कार्य में ।
जो जागता व्यवहार में वह सो रहा निज कार्य में ।।३१।।
इमि जान जोगी छोड़ सब व्यवहार सर्वप्रकार से ।
जिनवर कथित परमातमा का ध्यान धरते सदा ही ।।३२।।
पंच समिति महाव्रत अर तीन गुप्ति धर यती ।
रत्नत्रय से युक्त होकर ध्यान अर अध्ययन करो ।।३३।।
आराधना करते हुये को अराधक कहते सभी ।
आराधना का फल सुनो बस एक केवलज्ञान है ।।३४।।

सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी आतमा सिध शुद्ध है ।
यह कहा जिनवरदेव ने तुम स्वयं केवलज्ञानमय ।।३५।।
रतनत्रय जिनवर कथित आराधना जो यति करें ।
वे धरें आतम ध्यान ही संदेह इसमें रंच ना ।।३६।।
जानना ही ज्ञान है अरु देखना दर्शन कहा ।
पुण्य-पाप का परिहार चारित यही जिनवर ने कहा ।।३७।।
तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है तत्ग्रहण सम्यग्ज्ञान है ।
जिनदेव ने ऐसा कहा परिहार ही चारित्र है ।।३८।।
दृग-शुद्ध हैं वे शुद्ध उनको नियम से निर्वाण हो ।
दृग-भ्रष्ट हैं जो पुरुष उनको नहीं इच्छित लाभ हो ।।३९।।

उपदेश का यह सार जन्म-जरा-मरण का हरणकर ।
समदृष्टि जो मानें इसे वे श्रमण-श्रावक कहे हैं ॥४०॥
यह सर्वदर्शी का कथन कि जीव और अजीव की ।
भिन-भिन्नता को जानना ही एक सम्यग्ज्ञान है ॥४१॥
इमि जान करना त्याग सब ही पुण्य एवं पाप का ।
चारित्र है यह निर्विकल्पक कथन यह जिनदेव का ॥४२॥
रतनत्रय से युक्त हो जो तप करे संयम धरे ।
वह ध्यान धर निज आतमा का परमपद को प्राप्त हो ॥४३॥
रुष-राग का परिहार कर त्रययोग से त्रयकाल में ।
त्रयशल्य विरहित रतनत्रय धर योगि ध्यावे आत्मा ॥४४॥

जो जीव माया-मान-लालच-क्रोध को तज शुद्ध हो।
निर्मल-स्वभाव धरे वही नर परमसुख को प्राप्त हो ॥४५॥
जो रुद्र विषय-कषाय युत जिन भावना से रहित हैं।
जिनलिंग से हैं पराङ्मुख वे सिद्धसुख पावें नहीं ॥४६॥
जिनवर कथित जिनलिंग ही है सिद्धसुख यदि स्वप्न में।
भी ना रुचे तो जान लो भव गहन वन में वे रुलें ॥४७॥
परमात्मा के ध्यान से हो नाश लोभ कषाय का।
नवकर्म का आस्रव रुके यह कथन जिनवरदेव का ॥४८॥
जो योगि सम्यक्दर्शपूर्वक चारित्र दृढ़ धारण करे।
निज आतमा का ध्यानधर वह मुक्ति की प्राप्ति करे ॥४९॥

चारित्र ही निजधर्म है अर धर्म आत्मस्वभाव है ।
अनन्य निज परिणाम वह ही राग-द्वेष विहीन है ।।५०।।
फटिकमणिसम जीव शुध पर अन्य के संयोग से ।
वह अन्य-अन्य प्रतीत हो, पर मूलतः है अनन्य ही ।।५१।।
देव-गुरु का भक्त अर अनुरक्त साधक वर्ग में ।
सम्यक्सहित निज ध्यानरत ही योगि हो इस जगत में ।।५२।।
उग्र तप तप अज्ञ भव-भव में न जितने क्षय करें ।
विज्ञ अन्तर्मुहूरत में कर्म उतने क्षय करें ।।५३।।
परद्रव्य में जो साधु करते राग शुभ के योग से ।
वे अज्ञ हैं पर विज्ञ राग नहीं करें परद्रव्य में ।।५४।।

निज भाव से विपरीत अर जो आस्रवों के हेतु हैं ।
जो उन्हें मानें मुक्तिमग वे साधु सचमुच अज्ञ हैं ॥५५॥
अरे जो कर्मजमति वे करें आत्मस्वभाव को ।
खण्डित अतः वे अज्ञजन जिनधर्म के दूषक कहे ॥५६॥
चारित रहित है ज्ञान-दर्शन हीन तप संयुक्त है ।
क्रिया भाव विहीन तो मुनिवेष से क्या साध्य है ॥५७॥
जो आत्मा को अचेतन हैं मानते अज्ञानि वे ।
पर ज्ञानिजन तो आतमा को एक चेतन मानते ॥५८॥
निरर्थक तप ज्ञान विरहित तप रहित जो ज्ञान है ।
यदि ज्ञान तप हों साथ तो निर्वाणपद की प्राप्ति हो ॥५९॥

क्योंकि चारों ज्ञान से भी महामण्डित तीर्थंकर ।
भी तप करें बस इसलिए तप करो सम्यग्ज्ञान युत ॥६०॥
स्वानुभव से भ्रष्ट एवं शून्य अन्तरलिंग से ।
बहिर्लिंग जो धारण करें वे मोक्षमग नाशक कहे ॥६१॥
अनुकूलता में जो सहज प्रतिकूलता में नष्ट हो ।
इसलिये प्रतिकूलता में करो आतम साधना ॥६२॥
आहार निद्रा और आसन जीत ध्याओ आतमा ।
बस यही है जिनदेव का मत यही गुरु की आज्ञा ॥६३॥
ज्ञान दर्शन चरित मय जो आतमा जिनवर कहा ।
गुरु की कृपा से जानकर नित ध्यान उसका ही करो ॥६४॥

आत्मा का जानना भाना व करना अनुभवन ।
तथा विषयों से विरक्ति उत्तरोत्तर है कठिन ।।६५।।
जबतक विषय में प्रवृत्ति तबतक न आतमज्ञान हो ।
इसलिए आतम जानते योगी विषय विरक्त हों ।।६६।।
निज आतमा को जानकर भी मूढ़ रमते विषय में ।
हो स्वानुभव से भ्रष्ट भ्रमते चतुर्गति संसार में ।।६७।।
अरे विषय विरक्त हो निज आतमा को जानकर ।
जो तपोगुण से युक्त हों वे चतुर्गति से मुक्त हों ।।६८।।
यदि मोह से पर द्रव्य में रति रहे अणु प्रमाण में ।
विपरीतता के हेतु से वे मूढ़ अज्ञानी रहें ।।६९।।

शुद्ध दर्शन दृढ़ चरित एवं विषय विरक्त नर ।
निर्वाण को पाते सहज निज आतमा का ध्यान धर ॥७०॥
पर द्रव्य में जो राग वह संसार कारण जानना ।
इसलिये योगी करें नित निज आतमा की भावना ॥७१॥
निन्दा-प्रशंसा दुक्ख-सुख अर शत्रु-बंधु-मित्र में ।
अनुकूल अर प्रतिकूल में समभाव ही चारित्र है ॥७२॥
जिनके नहीं व्रत-समिति चर्या भ्रष्ट हैं शुधभाव से ।
वे कहें कि इस काल में निज ध्यान योग नहीं बने ॥७३॥
जो शिवविमुख नर भोग में रत ज्ञानदर्शन रहित हैं ।
वे कहें कि इस काल में निज ध्यान-योग नहीं बने ॥७४॥

जो मूढ़ अज्ञानी तथा व्रत समिति गुप्ति रहित हैं ।
वे कहें कि इस काल में निज ध्यान योग नहीं बने ॥७५॥
भरत-पंचमकाल में निजभाव में थित संत के ।
नित धर्मध्यान रहे न माने जीव जो अज्ञानि वे ॥७६॥
रतनत्रय से शुद्ध आतम आतमा का ध्यान धर ।
आज भी हों इन्द्र आदिक प्राप्त करते मुक्ति फिर ॥७७॥
जिन लिंग धर कर पाप करते पाप मोहितमति जो ।
वे च्युत हुए हैं मुक्तिमग से दुर्गति दुर्मति हो ॥७८॥
हैं परिग्रही अध:कर्मरत आसक्त जो वस्त्रादि में ।
अर याचना जो करें वे सब मुक्तिमग से बाह्य हैं ॥७९॥

रे मुक्त हैं जो जितकषायी पाप के आरंभ से ।
परिषहजयी निर्ग्रंथ वे ही मुक्तिमारग में कहे ॥८०॥
त्रैलोक में मेरा न कोई मैं अकेला आतमा ।
इस भावना से योगिजन पाते सदा सुख शास्वता ॥८१॥
जो ध्यानरत सुचरित्र एवं देव-गुरु के भक्त हैं ।
संसार-देह विरक्त वे मुनि मुक्तिमारग में कहे ॥८२॥
निजद्रव्यरत यह आतमा ही योगि चारित्रवंत है ।
यह ही बने परमातमा परमार्थनय का कथन यह ॥८३॥
ज्ञानदर्शनमय अवस्थित पुरुष के आकार में ।
ध्याते सदा जो योगि वे ही पापहर निर्द्वन्द हैं ॥८४॥

जिनवरकथित उपदेश यह तो कहा श्रमणों के लिए ।
अब सुनो सुखसिद्धिकर उपदेश श्रावक के लिए ॥८५॥
सबसे प्रथम सम्यक्त्व निर्मल सर्व दोषों से रहित ।
कर्मक्षय के लिये श्रावक-श्राविका धारण करें ॥८६॥
अरे सम्यग्दृष्टि है सम्यक्त्व का ध्याता गृही ।
दुष्टाष्ट कर्मों को दहे सम्यक्त्व परिणत जीव ही ॥८७॥
मुक्ति गये या जायेंगे माहात्म्य है सम्यक्त्व का ।
यह जान लो हे भव्यजन ! इससे अधिक अब कहें क्या ॥८८॥
वे धन्य हैं सुकृतार्थ हैं वे शूर नर पण्डित वही ।
दुःस्वप्न में सम्यक्त्व को जिनने मलीन किया नहीं ॥८९॥

सब दोष विरहित देव अर हिंसारहित जिनधर्म में ।
निर्ग्रन्थ गुरु के वचन में श्रद्धान ही सम्यक्त्व है ॥९०॥
यथाजातस्वरूप संयत सर्व संग विमुक्त जो ।
पर की अपेक्षा रहित लिंग जो मानते समदृष्टि वे ॥९१॥
जो लाज-भय से नमें कुत्सित लिंग कुत्सित देव को।
और सेवें धर्म कुत्सित जीव मिथ्यादृष्टि वे ॥९२॥
अरे रागी देवता अर स्वपरपेक्षा लिंगधर ।
व असंयत की वंदना न करें सम्यग्दृष्टिजन ॥९३॥
जिनदेव देशित धर्म की श्रद्धा करें सद्दृष्टिजन ।
विपरीतता धारण करें बस सभी मिथ्यादृष्टिजन ॥९४॥

अरे मिथ्यादृष्टिजन इस सुखरहित संसार में ।
प्रचुर जन्म-जरा-मरण के दुख हजारों भोगते ।।९५।।
जानकर सम्यक्त्व के गुण-दोष मिथ्याभाव के ।
जो रुचे वह ही करो अधिक प्रलाप से है लाभ क्या ।।९६।।
छोड़ा परिग्रह बाह्य मिथ्याभाव को नहिं छोड़ते ।
वे मौन ध्यान धरें परन्तु आतमा नहीं जानते ।।९७।।
मूलगुण उच्छेद बाह्य क्रिया करें जो साधुजन ।
हैं विराधक जिनलिंग के वे मुक्ति-सुख पाते नहीं ।।९८।।
आत्मज्ञान बिना विविध-विध विविध क्रिया-कलाप सब ।
और जप-तप पद्म-आसन क्या करेंगे आत्महित ।।९९।।

यदि पढ़े बहुश्रुत और विविध क्रिया-कलाप करे बहुत।
पर आत्मा के भान बिन बालाचरण अर बालश्रुत ॥१००॥
निजसुख निरत भवसुख विरत परद्रव्य से जो पराङ्मुख।
वैराग्य तत्पर गुणविभूषित ध्यान धर अध्ययन सुरत ॥१०१॥
आदेय क्या है हेय क्या - यह जानते जो साधुगण।
वे प्राप्त करते थान उत्तम जो अनन्तानन्दमय ॥१०२॥
जिनको नमे थुति करे जिनकी ध्यान जिनका जग करे।
वे नमें ध्यावें थुति करें तू उसे ही पहिचान ले ॥१०३॥
अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठी पण।
सब आतमा की अवस्थायें आत्मा ही है शरण ॥१०४॥

सम्यक् सुदर्शन ज्ञान तप समभाव सम्यक् आचरण ।
सब आतमा की अवस्थायें आत्मा ही है शरण ॥१०५॥
जिनवर कथित यह मोक्षपाहुड जो पुरुष अति प्रीति से ।
अध्ययन करें भावें सुनें वे परमसुख को प्राप्त हों ॥१०६॥

———o———

अनादिकाल से हमने देहादि परपदार्थों को अपना माना और निज भगवान आत्मा को अपना नहीं माना, पर न तो आजतक देहादि परपदार्थ अपने हुए और न भगवान आत्मा ही पराया हुआ।

—गागर में सागर, पृष्ठ-२५

लिंगपाहुड़

कर नमन श्री अरिहंत को सब सिद्ध को करके नमन ।
संक्षेप में मैं कह रहा हूँ, लिंगपाहुड शास्त्र यह ॥१॥
धर्म से हो लिंग केवल लिंग से न धर्म हो ।
समभाव को पहिचानिये द्रवलिंग से क्या कार्य हो ॥२॥
परिहास में मोहितमती धारण करें जिनलिंग जो ।
वे अज्ञजन बदनाम करते नित्य जिनवर लिंग को ॥३॥
जो नाचते गाते बजाते वाद्य जिनवर लिंगधर ।
हैं पाप मोहितमती रे वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ॥४॥

जो आर्त होते जोड़ते रखते रखाते यत्न से ।
वे पाप मोहितमती हैं वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ॥५॥
अर कलह करते जुआ खेलें मानमंडित नित्य जो ।
वे प्राप्त होते नरकगति को सदा ही जिन लिंगधर ॥६॥
जो पाप उपहत आत्मा अब्रह्म सेवें लिंगधर ।
वे पाप मोहितमती जन संसारवन में नित भ्रमें ॥७॥
जिनलिंगधर भी ज्ञान-दर्शन-चरण धारण ना करें ।
वे आर्तध्यानी द्रव्यलिंगी नंत संसारी कहे ॥८॥
रे जो करावें शादियाँ कृषि वणज कर हिंसा करें ।
वे लिंगधर ये पाप कर जावें नियम से नरक में ॥९॥

जो चोर लाबर लड़ावें अर यंत्र से क्रीडा करें ।
वे लिंगधर ये पाप कर जावें नियम से नरक में ॥१०॥
ज्ञान-दर्शन-चरण तप संयम नियम पालन करें ।
पर दुःखी अनुभव करें तो जावें नियम से नरक में ॥११॥
कन्दर्प आदि में रहें अति गृद्धता धारण करें ।
हैं छली व्याभिचारी अरे ! वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ॥१२॥
जो कलह करते दौड़ते हैं इष्ट भोजन के लिये ।
अर परस्पर ईर्षा करें वे श्रमण जिनमार्गी नहीं ॥१३॥
बिना दीये ग्रहें परनिन्दा करें जो परोक्ष में ।
वे धरें यद्यपि लिंगजिन फिर भी अरे वे चोर हैं ॥१४॥

ईर्या समिति की जगह पृथ्वी खोदते दौड़ें गिरें ।
रे पशूवत उड्कर चलें वे श्रमण नहिं तिर्यंच हैं ॥१५॥
जो बंधभय से रहित पृथ्वी खोदते तरु छेदते ।
अर हरित भूमी रोंधते वे श्रमण नहीं तिर्यंच हैं ॥१६॥
राग करते नारियों से दूसरों को दोष दें ।
सद्ज्ञान-दर्शन रहित हैं वे श्रमण नहिं तिर्यंच है ॥१७॥
श्रावकों में शिष्यगण में नेह रखते श्रमण जो ।
हीन विनयाचार से वे श्रमण नहीं तिर्यंच हैं ॥१८॥
इस तरह वे भ्रष्ट रहते संयतों के संघ में ।
रे जानते बहुशास्त्र फिर भी भाव से तो नष्ट हैं ॥१९॥

पार्श्वस्थ से भी हीन जो विश्वस्त महिलावर्ग में ।
रत ज्ञान-दर्शन-चरण दें वे नहीं पथ अपवर्ग हैं ॥२०॥
जो पुंश्चली के हाथ से आहार लें शंशा करें ।
निज पिंड पोसें वालमुनि वे भाव से तो नष्ट हैं ॥२१॥
सर्वज्ञ भाषित धर्ममय यह लिंगपाहुड जानकर ।
अप्रमत्त हो जो पालते वे परमपद को प्राप्त हों ॥२२॥

———o———

दु:खों के अभाव के लिए, अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति के लिए पर में कुछ करना ही नहीं है, सबकुछ अपने में ही करना है। —गागर में सागर, पृष्ठ-३५

शीलपाहुड़

विशाल जिनके नयन अर रक्तोत्पल जिनके चरण ।
त्रिविध नम उन वीर को मैं शील गुण वर्णन करूँ ॥१॥
शील एवं ज्ञान में कुछ भी विरोध नहीं कहा ।
शील बिन तो विषयविष से ज्ञानधन का नाश हो ॥२॥
बड़ा दुष्कर जानना अर जानने की भावना ।
एवं विरक्ति विषय से भी बड़ी दुष्कर जानना ॥३॥
विषय बल हो जबतलक तबतलक आतमज्ञान ना ।
केवल विषय की विरक्ति से कर्म का हो नाश ना ॥४॥

दर्शन रहित यदि वेष हो चारित्र विरहित ज्ञान हो ।
संयम रहित तप निरर्थक आकास-कुसुम समान हो ॥५॥
दर्शन सहित हो वेश चारित्र शुद्ध सम्यग्ज्ञान हो ।
संयम सहित तप अल्प भी हो तदपि सुफल महान हो ॥६॥
ज्ञान हो पर विषय में हों लीन जो नर जगत में ।
रे विषयरत वे मूढ़ डोलें चार गति में निरन्तर ॥७॥
जानने की भावना से जान निज को विरत हों ।
रे वे तपस्वी चार गति को छेदते संदेह ना ॥८॥
जिसतरह कंचन शुद्ध हो खड़िया-नमक के लेप से ।
बस उसतरह हो जीव निर्मल ज्ञान जल के लेप से ॥९॥

हो ज्ञानगर्भित विषयसुख में रमें जो जन योग से ।
उस मंदबुद्धि कापुरुष के ज्ञान का कुछ दोष ना ।।१०।।
जब ज्ञान, दर्शन, चरण, तप सम्यक्त्व से संयुक्त हो ।
तब आतमा चारित्र से प्राप्ति करे निर्वाण की ।।११।।
शील रक्षण शुद्ध दर्शन चरण विषयों से विरत ।
जो आत्मा वे नियम से प्राप्ति करें निर्वाण की ।।१२।।
सन्मार्गदर्शी ज्ञानि तो है सुज्ञ यद्यपि विषयरत ।
किन्तु जो उन्मार्गदर्शी ज्ञान उनका व्यर्थ है ।।१३।।
यद्यपि बहुशास्त्र जाने कुमत कुश्रुत प्रशंसक ।
रे शीलव्रत से रहित हैं वे आत्म-आराधक नहीं ।।१४।।

रूप योवन कान्ति अर लावण्य से सम्पन्न जो ।
पर शीलगुण से रहित हैं तो निरर्थक मानुष जनम ।।१५।।
व्याकरण छन्दरु न्याय जिनश्रुत आदि से सम्पन्नता ।
हो किन्तु इनमें जान लो तुम परम उत्तम शील गुण ।।१६।।
शील गुण मण्डित पुरुष की देव भी सेवा करें ।
ना कोई पूछे शील विरहित शास्त्रपाठी जनों को ।।१७।।
हों हीन कुल सुन्दर न हों सब प्राणियों से हीन हों ।
हों वृद्ध किन्तु सुशील हों नरभव उन्हीं का सफल है ।।१८।।
इन्द्रियों का दमन करुणा सत्य सम्यक् ज्ञान-तप ।
अचौर्य ब्रह्मोपासना सब शील के परिवार हैं ।।१९।।

शील दर्शन-ज्ञान शुद्धि शील विषयों का रिपू ।
शील निर्मल तप अहो यह शील सीढ़ी मोक्ष की ॥२०॥
हैं यद्यपि सब प्राणियों के प्राण घातक सभी विष ।
किन्तु इन सब विषों में है महादारुण विषयविष ॥२१॥
बस एक भव का नाश हो इस विषम विष के योग से ।
पर विषयविष से ग्रसितजन चिरकाल भववन में भ्रमें ॥२२॥
अरे विषयासक्त जन नर और तिर्यग् योनि में ।
दुःख सहें यद्यपि देव हों पर दुःखी हों दुर्भाग्य से ॥२३॥
अरे कुछ जाता नहीं तुष उड़ाने से जिसतरह ।
विषय सुख को उड़ाने से शीलगुण उड़ता नहीं ॥२४॥

गोल हों गोलार्द्ध हों सुविशाल हों इस देह के ।
सब अंग किन्तु सभी में यह शील उत्तम अंग है ॥२५॥
भव-भव भ्रमें अरहट घटीसम विषयलोलुप मूढजन ।
साथ में वे भी भ्रमें जो रहे उनके संग में ॥२६॥
इन्द्रिय विषय के संग पढ़ जो कर्म बाँधे स्वयं ही ।
सत्पुरुष उनको खपावे व्रत-शील-संयमभाव से ॥२७॥
ज्यों रत्नमंडित उदधि शोभे नीर से बस उसतरह ।
विनयादि हों पर आत्मा निर्वाण पाता शील से ॥२८॥
श्वान गर्दभ गाय पशु अर नारियों को मोक्ष ना ।
पुरुषार्थ चौथा मोक्ष तो बस पुरुष को ही प्राप्त हो ॥२९॥

यदि विषयलोलुप ज्ञानियों को मोक्ष हो तो बताओ ।
दशपूर्वधारी सात्यकीसुत नरकगति में क्यों गया ।।३०।।
यदि शील बिन भी ज्ञान निर्मल ज्ञानियों ने कहा तो ।
दशपूर्वधारी रूद्र का भी भाव निर्मल क्यों न हो ।।३१।।
यदि विषयविरक्त हो तो वेदना जो नरकगत ।
वह भूलकर जिनपद लहे यह बात जिनवर ने कही ।।३२।।
अरे! जिसमें अतीन्द्रिय सुख ज्ञान का भण्डार है ।
वह मोक्ष केवल शील से हो प्राप्त - यह जिनवर कहें ।।३३।।
ये ज्ञान दर्शन वीर्य तप सम्यक्त्व पंचाचार मिल ।
जिम आग ईंधन जलावे तैसे जलावें कर्म को ।।३४।।

जो जितेन्द्रिय धीर विषय विरक्त तपसी शीलयुत ।
वे अष्ट कर्मों से रहित हो सिद्धगति को प्राप्त हों ॥३५॥
जिस श्रमण का यह जन्म तरु सर्वांग सुन्दर शीलयुत ।
उस महात्मन् श्रमण का यश जगत में है फैलता ॥३६॥
ज्ञानध्यानरु योगदर्शन शक्ति के अनुसार हैं ।
पर रत्नत्रय की प्राप्ति तो सम्यक्त्व से ही जानना ॥३७॥
जो शील से सम्पन्न विषय विरक्त एवं धीर हैं ।
वे जिनवचन के सारग्राही सिद्ध सुख को प्राप्त हो ॥३८॥
सुख-दुख विवर्जित शुद्धमन अर कर्मरज से रहित जो ।
वह क्षीणकर्मा गुणमयी प्रकटित हुई आराधना ॥३९॥

विषय से वैराग्य अर्हतभक्ति सम्यक्दर्श से ।
अर शील से संयुक्त ही हो ज्ञान की आराधना ॥४०॥

———o———

पूरण हुआ आनन्द से श्रावण सुदी एकादशी।
को पद्यमय अनुवाद यह सन् दो सहस दो ईसवी॥

———o———